इकाई 37 समाज में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

37.0 उद्देश्य

इससे पूर्व की इकाई में हमने गुप्त और विशेषकर उत्तर-गुप्त काल में अर्थव्यवस्था में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों का विवेचन किया था। इस इकाई में हम आपको समाज में हुए परिवर्तनों के विभिन्न आयामों की जानकारी से अवगत कराएंगे। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान पाएंगे:

- उन शक्तियों के विषय में जिनके कारण वर्ण पदानुक्रम की संरचना एवं अवधारणा में मामूली बदलाव आए,
- उन प्रक्रियाओं के विषय में जो बहुत-सी नई जातियों के उदय के लिए उत्तरदायी थीं,
- उन परिस्थितियों के विषय में जिनसे अछूतों की समाज में स्थिति दयनीय हो गई, और
- ऐसी जातीय व्यवस्था के विषय में जिसने प्राचीन काल से स्पष्ट अंतर किया।

37.1 प्रस्तावना

गुप्त तथा उत्तर-गुप्त काल में हुए सामाजिक परिवर्तनों को आर्थिक परिवर्तनों के साथ संबंधित किया जा सकता है और उनका हम इकाई 36 में विवेचन कर चुके हैं। इस काल की मुख्य-मुख्य आर्थिक शक्तियां व्यापक स्तर पर भूमि-अनुदान, व्यापार का ह्रास, वाणिज्य और नगरीय जीवन, धन की कमी, कृषि का प्रसार और समाज का बढ़ता कृषि चरित्र, उत्पादन और उपभोग की अपेक्षाकृत बंद स्थानीय इकाइयों का उद्भव थीं। इस आधार पर एक ऐसे समाज का ढांचा विकसित हुआ जिसके अंतर्गत मुख्य रूप से काफी बड़ी संख्या में शासक कुलीन ज़मींदार, बिचौलिए और बहु-संख्यक किसान थे। भूमि सम्पत्ति और सत्ता के असमान वितरण के कारण ऐसे नए सामाजिक गुटों तथा वर्गों का उदय हुआ जो वर्ण विभाजन जैसे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की सीमाओं को पार कर गया। सामाजिक संरचना में हुए दूसरे महत्वपूर्ण परिवर्तन थे नई जातियों की उत्पत्ति एवं संवृद्धि, जाति सम्बन्धों का कठोर होना और कबीलों के द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाना। कबिलाई लोगों के द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाना, भूमि-अनुदान के फलस्वरूप कबिलाई क्षेत्रों में ब्राह्मणों की गतिविधियों का साधारण परिणाम न था। इसी कारणवश दूर-दराज के इलाकों में स्थानीय शाही परिवारों का उद्भव हुआ और इन स्थानीय शासक परिवारों के द्वारा भूमि-

अनुदानों, शाही दरबारों तथा अन्य कार्यालयों में कार्य प्रदान करके ब्राह्मणों को संरक्षण प्रदान किया गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों का उद्‌भव एक ओर अधिक जटिल समाज के रूप में हुआ जिसके अंतर्गत सामाजिक विभेद का प्रतिनिधित्व किसानों, ब्राह्मणों, दस्तकारों, व्यापारियों, शासकों आदि जैसे विभिन्न समूहों द्वारा किया जाता था।

37.2 राजनीतिक और सामाजिक पदानुक्रम तथा वर्ण व्यवस्था

भूमि-अनुदानों, उदित हुए बिचौलिए ज़मींदारों और राजनीतिक शक्ति तथा आर्थिक ताकत के गठजोड़ ने वर्ण के आधार पर विभाजित समाज को भी संशोधित किया। नए सामाजिक गुट चार वर्णों वाली व्यवस्था में समा न सके। असमान भूमि के बंटवारे ने ऐसे वर्गों को पैदा किया कि वे वर्ण पर आधारित सामाजिक स्तरों को लांघ गए। अपनी विभिन्न सामाजिक उत्पत्तियों (वर्णों अथवा अनुष्ठानिक वर्गों) के बावजूद सामन्तों और शासक भू-कुलीनों का उदय एक विशेष चरित्र के साथ हुआ। ब्राह्मण ज़मींदार इस वर्ग का एक भाग थे। उन्होंने अपने ब्राह्मणिक कार्य का परित्याग कर दिया और भूमि तथा जनता के प्रबंधन पर अपना ध्यान केन्द्रित करने लगे। ब्राह्मणों के इस प्रकार के गुट ब्राह्मणिक कार्यों को करने वालों की तुलना में शासक वर्ग के लोगों के साथ अधिक समानता रखते थे। बाद के समय में इन लोगों ने भी ठाकुर, रौत जैसी आदि उपाधियों को धारण किया। विदेशी जातीय गुटों तथा भारतीय कबिलाई सरदारों के शासक कुलीन वर्ग के क्षत्रिय वर्ण में और ब्राह्मण संस्कृति को ग्रहण करने वाले कबिलाई लोगों के शूद्र वर्ण में शामिल हो जाने से न केवल उनके सामाजिक स्तरों में वृद्धि हुई बल्कि वर्ण पर आधारित विभाजित समाज भी रूपांतरित हुआ। इससे भी अधिक, इस काल में द्विज (दो बार जन्मा) और शूद्रों के बीच का प्रारंभिक अंतर भी संशोधित होने लगा।

इस काल में भूमि ने समाज में विशेष महत्व प्राप्त कर लिया। भू-सम्पत्ति या किसी के अधीन कितनी भूमि है, इस आधार पर सामाजिक स्तरों का विभाजन होने लगा। और यह किसी वर्ण विशेष तक सीमित न था।

दूसरे शब्दों में, अब किसी की सामाजिक स्थिति साधारणतः इस बात पर आधारित नहीं रह गई थी कि वह किस वर्ण से संबंधित था। उसके सामाजिक रुतबे का सम्बन्ध इस बात से हो गया था कि विभिन्न श्रेणियों के भूमि स्वामियों में उसके भू-स्वामित्व की क्या स्थिति थी। इन प्रवृत्तियों का प्रारंभ इस समय में हुआ और 9-10वीं सदियों में इनकी गति और तीव्र हो गई। 9-10वीं सदियों से, कायस्थों, व्यापारियों और धनी प्रभुत्वशाली किसानों ने राणका, नायक जैसी उपाधियों को धारण करना शुरू कर दिया। वे उच्च समाज और शासक कुलीन वर्ग का एक भाग बन गए। वरामिहिर की **बृहत संहिता** में इन परिवर्तनों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसने जन्म पर आधारित सामाजिक पदों का पुर्नमिलन करने का प्रयास किया है। इस प्रकार की चिन्ता मध्यकालीन स्थापत्य कला के ग्रंथों में भी व्यक्त की गई है।

गुप्त और उत्तर-गुप्त कालों की मुख्य विशेषता नई जातियों का उदय एवं प्रसार था। नई जातियों की बढ़ती संख्या ने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, कायस्थों एवं शूद्रों को प्रभावित किया। संकर-जातियों और शूद्र जातियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। दस्तकार संगठनों का जातियों में रूपांतरण, व्यापार और नगरीय केन्द्रों के पतन के फलस्वरूप तथा दस्तकारी की पैतृक विशेषता ने नई जातियों के निर्माण की प्रक्रिया में मदद की। आठवीं सदी का ग्रंथ **विष्णुधर्मोत्रय** पुराण उल्लेख करता है कि वैश्य महिलाओं के छोटी जातियों के लोगों के साथ मिल जाने के फलस्वरूप संकर-जातियों की उत्पत्ति हुई। ईसा की प्रारंभिक सदियों की सामाजिक स्थिति की तुलना में यह एकदम विपरीत स्थिति थी क्योंकि मनु के अनुसार संकर-जातियों की संख्या मात्र 61 थी। ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाने और कबिलाइयों तथा शूद्र जातियों के पिछड़े लोगों के बीच परस्पर मिलन के फलस्वरूप नई जातियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। इसी के साथ अछूतों को उद्धृत किया जा सकता है, जो भिन्न-भिन्न उत्पत्तियों से संबंधित थे।

वर्ण संकर

वर्ण संकर का अर्थ था कि परस्पर-मिश्रण या वर्ण/जातियों की एकता। सामान्यतः इसको सामाजिक मान्यता प्राप्त न थी और इसके फलस्वरूप संकर-जातियों की उत्त्पत्ति हुई, जो सामाजिक अव्यवस्था का प्रतीक थीं।

नई जातियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि के फलस्वरूप जातीय व्यवस्था में काफी कठोरता आ गई और अंतर्जातीय विवाहों को कम पसन्द किया जाने लगा। पहले के अनुलोम विवाह या बड़ी जाति के पुरुष तथा छोटी जाति की महिला के बीच होने वाले विवाहों को स्वीकृति प्रदान कर दी गई। परन्तु प्रतिलोम विवाह (अनुलोम विवाह का उलटा) पर प्रतिबंध लगा दिया गया। परन्तु धीरे-धीरे अनुलोम विवाहों की संख्या में भी वृद्धि बंद हो गई।

37.3 कायस्थों का विकास

मुनीम या कायस्थ समुदाय उस समय की सामाजिक-आर्थिक शक्तियों की उपज थे। भूमि-अनुदानों के फलस्वरूप भूमि राजस्व तथा भूमि का हस्तांतरण ब्राह्मणों, धार्मिक संगठनों तथा अधिकारियों को हो गया था। इस तथा अन्य जटिल प्रशासनिक कार्यों के फलस्वरूप लेखन का काम करने एवं प्रमाणों को रखने वाले लोगों की आवश्यकता हुई जिनका कार्य था भूमि-अनुदानों का लेखन करना और राजस्व के बहुत से अन्य मामलों के साथ-साथ भूमि हस्तांतरण के विवरणों को रखना। गुप्त काल में भूमि का बंटवारा शुरू हो गया। उस समय भी भूमि विभाजन तथा ग्रामीण सीमाओं के झगड़ों के नियम थे जिनका उल्लेख धर्मशास्त्रों मे हुआ है। भूमि के एक-एक भूखण्ड के प्रमाण को ठीक प्रकार रखना, इस प्रकार के झगड़ों को निपटाने के लिए आवश्यक था। एक ही भूखंड या गांव पर भिन्न-भिन्न प्रकार के अधिकारों का अस्तित्व होने से भूमि व्यवस्था बड़ी जटिल हो गई। इसलिए भूमि प्रमाणों को आवश्यक विवरणों के साथ रखना पड़ता था। इस कठिन कार्य को एक लिखने वाले वर्ण के द्वारा किया जाता जिसको बहुत नामों जैसे कि कायस्थ, करण, करणिका, पुरत्तपल, चित्रगुप्त, अक्षपतिलिका आदि से जाना जाता था। लेखन का कार्य करने वालों का कायस्थ मात्र एक गुट था। परन्तु शनैः-शनैः मुनीम और समुदाय के रूप में प्रमाणों को रखने वालों को कायस्थ कहा जाने लगा। प्रारंभ में उच्च वर्णों के पढ़े-लिखे लोगों को कायस्थ का काम करने के लिए लगाया जाता। समय के साथ-साथ मुनीमों को कार्य करने के लिए उनकी भर्ती बहुत से वर्णों से की जाने लगी और उनके व्यवसाय के कारण उनके सामाजिक आदान-प्रदान का दायरा सिकुड़ने लगा एवं उनके बीच भी एक जातीय विवाह तथा परिवार से बाहर विवाह करने की परम्परा का अनुसरण किया जाने लगा। इस प्रकार कायस्थ जाति के निर्माण की प्रक्रिया पूरी हो गई। इनके विषय में सबसे पहले उल्लेख ईसा की प्रारंभिक सदियों से मिलना प्रारंभ हो गया। 900 ई. के लगभग से इनका उद्भव बहुत से राज्यों में उच्च पदों पर आसीन एक शक्तिशाली और दृढ़ निश्चय वाली जाति के रूप में हुआ।

37.4 अछूत

"अपवित्र" या अछूत जातियों ने ईसा की प्रारंभिक सदियों में निश्चित स्वरूप प्राप्त कर लिया था। परन्तु उस समय में उनकी संख्या बहुत कम थी। तीसरी सदी ई. के आसपास से अछूत परम्परा ने ज़ोर पकड़ना शुरू कर दिया तथा इनकी संख्या में वृद्धि होने लगी। गुप्त काल में धर्मशास्त्र का लेखक कात्यायन ऐसा प्रथम लेखक था जिसने अछूत अर्थ के लिए **अस्पर्श** शब्द का प्रयोग किया। गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में अन्य बहुत सी जातियों को अछूत श्रेणी में शामिल कर दिया गया। न केवल शिकारियों और कारीगरों के कुछ गुट अछूत हो गए बल्कि पिछड़े किसानों को भी इस स्थिति में रख दिया गया। प्रथम सहस्राब्दी ई. के आसपास से शिकारियों, मछुआरों, जानवरों का वध करने वाले (कसाइयों), जल्लादों और महत्तरों को अछूत श्रेणी में शामिल कर दिया गया। कालिदास, वराहमिहिर, फाहियान, बाण तथा अन्य लेखकों ने अपनी रचनाओं में उन पर लगाए गए सामाजिक प्रतिबंधों का रोचक चित्रण किया है। **चाण्डालों** का भी एक भाग अछूतों के अंतर्गत आता था, यद्यपि सामाजिक पदानुक्रम में उसका स्तर सबसे निम्न था। यह भी बड़ी ही रोचक बात है कि अछूतों के बीच भी जाति पदानुक्रम पैदा हो गया। तत्कालीन साहित्य में उनके लिए तिरस्कारपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया गया। लालची, झूठा, चोर, अपवित्र आदि उनके विशेष गुण बताए गए।

इस काल तथा बाद के समय में अछूतों की संख्या में कितनी वास्तविक वृद्धि हुई इसको बता पाना कठिन है। ब्राह्मणिक तथा बौद्ध ग्रंथों का मत है कि अछूत जातियां मूलतः पिछड़े हुए आदिवासियों से संबंधित थीं। यह तर्क दिया जाता है कि उनके पिछड़ेपन तथा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाने की प्रक्रिया और ब्राह्मणवाद के उनके विरोध के कारण उनको समाज में शामिल नहीं किया गया तथा उनको अछूतों की स्थिति की ओर धकेल दिया गया। यद्यपि यह भी हो सकता है कि उनको भूमि के अधिकार से वंचित करके गांवों के बाहर की ओर बसा दिया गया। ब्राह्मणों और सत्ता-सम्पन्न लोगों की ओर से इन पिछड़े लोगों का तिरस्कार और धार्मिक अवसरों पर उनके द्वारा आयोजित आतिथ्य को स्वीकार न किया जाना तथा समय-समय पर इन पिछड़े लोगों के द्वारा ब्राह्मणिक व्यवस्था का विरोध, इन सबसे ऐसा प्रतीत होता है कि अछूतों की संख्या में काफी वृद्धि हुई और अछूतता व्यावहारिक बन गई। श्रमिकों की बढ़ती मांग और अछूतों की शोषित, सम्पत्ति विहीन लोगों के समुदाय के रूप में उपस्थिति, ग्रामीण समाज के अन्य लोगों के लिए अति लाभकारी सिद्ध हुआ। सामान्यतः अछूतों के पास भूमि नहीं होती थी, गांव से बाहर की ओर उनको बसाया जाता और वे कृषक नहीं बन सकते थे। वर्ष में जिस समय काम कम होता तो उनको शारीरिक परिश्रम से वंचित कर दिया जाता तथा जिस समय कृषि कार्य अत्यधिक होता तो उनको काम दिया जाता। इस भांति अछूत लोगों

को उस समय रोज़गार उपलब्ध कराया जाता जबकि समाज को उसकी आवश्यकता होती परन्तु सामाजिक स्तर पर उनका बहिष्कार तथा अलगाव किया जाता।

बोध प्रश्न 1

1) उत्तर-गुप्त काल में सामाजिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन किस प्रकार से अर्थव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों से संबंधित थे। 15 पंक्तियों में विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए:

i) असमान भू-सम्पत्ति और शक्ति के बंटवारे के फलस्वरूप ऐसे नए सामाजिक गुटों का उद्भव हुआ जिन्होंने परम्परागत वर्ण विभाजनों की सीमाओं को लांघ दिया।

ii) बौद्ध धर्म के ग्रंथों का मत है कि अछूत जातियों की उत्त्पत्ति पिछड़े हुए कबीलों से नहीं हुई।

iii) गुप्त और उत्तर-गुप्त कालों में दूर-दराज के इलाकों में शाही परिवारों का उद्भव हुआ।

3) आप वर्ण संकर से क्या समझते हैं? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

37.5 दस्तकारी और जातियां

इस काल के दौरान कारीगरों तथा दस्तकारों के बहुत से गुटों ने अपने प्रारंभिक स्तरों को खो दिया और उनमें से कई को अछूतों की श्रेणी में माना जाने लगा। संभवतः यह उन नगरीय केन्द्रों के पतन के फलस्वरूप हुआ जहां पर दस्तकारों की काफी बड़ी संख्या में मांग थी। दस्तकारी के संगठन जातियों में रूपांतरित हो गए और इस रूपांतरण को दस्तकारी उत्पादन के संगठन तथा प्रकृति में हुए परिवर्तन में प्रभावकारी ढंग से

समझा जा सकता है। बहुत सी जातियां जैसे कि स्वर्णकार (सुनार), मालाकार (माला बनाने वाला), चित्रकार, नपिता (नाई) आदि की उत्पत्ति विभिन्न दस्तकारियों (जिनका अनुसरण विभिन्न गुटों द्वारा किया जाता था) से हुई। कारीगरों के भी कुछ वर्ग अछूत बन गए। दसवीं सदी के अंत तक जुलाहे, रंगकार, दर्जी, नाई, जूतों का निर्माण करने वाले, लुहार, धोबी और अन्यों की स्थिति भी अछूतों जैसी हो गई। उदाहरण के लिए, गुप्त काल में उनमे से कई की जैसे जुलाहों की सामाजिक स्थिति उच्च थी। इस प्रकार, जिस युग के विषय में हम लिख रहे हैं, बहुत से कारीगरों के समूहों ने धीरे-धीरे अपनी स्थिति को खो दिया।

37.6 वैश्यों का ह्रास और शूद्रों के सामाजिक स्तर में बढ़ोत्तरी

धर्मशास्त्रों और इसी तरह के अन्य साहित्य में उल्लेख है कि चारों वर्णों के ढांचे के अंतर्गत सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन होना शुरू हुआ। शूद्रों के एक भाग का कृषि के साथ सम्बन्ध कायमं होने के बाद उनके सामाजिक तथा आर्थिक स्तर में बढ़ोत्तरी हुई। वैश्यों के विशेषकर उस भाग का, जो अपने वर्ण में सबसे नीचे के स्तर पर थे, पतन शूद्रों के स्तर तक हुआ। इस प्रकार दो नीचे के वर्णों की सापेक्ष स्थिति में परिवर्तन हुआ। शूद्र अब केवल दास और सेवक मात्र नहीं रह गए थे। उनका उदय काश्तकारों, बटाईदारों तथा किसानों के रूप में हुआ। नगरों के पतन के कारण शूद्र कारीगरों को खेती के काम को मजबूरन स्वीकार करना पड़ा। कुछ आचार-संहिता की पुस्तकों तथा सातवीं सदी के चीनी यात्री ह्वेनत्सांग के यात्रा वृतांत में उल्लेख है कि खेती करना शूद्रों का कर्तव्य था। **स्कन्द पुराण** में शूद्रों को अनाज का देने वाला (अन्नदाता) कहा गया है।

उत्तर-मौर्य काल में भारत के विदेश व्यापार की पराकाष्ठा के दौरान वैश्यों की पहचान व्यवसायों तथा नगरों के साथ की जाती थी। उत्तर-गुप्त काल में कृषि व्यवस्था की प्राथमिकता के कारण वैश्य व्यापारियों तथा सौदागरों को आर्थिक नुकसान एवं सामाजिक पतनशीलता का सामना करना पड़ा। उनमें से बहुतों ने अपना जीवन यापन करने के लिए कृषि कार्यों को अपना लिया। साहित्यिक साक्ष्यों के अनुसार, गुप्त काल तक वैश्य वर्ण से नीचे स्तर वाले स्वतंत्र किसान भू-स्वामी इस समय में निर्भर तथा दासत्व किसानों में परिवर्तित हो गए। वैश्य एवं शूद्रों के बीच का अंतर काफी कम हो गया और उनके व्यवसायों तथा रहने के स्तर की भिन्नताएं भी समाप्त हो गईं। इसलिए बाद के काल की रचनाओं और विशेषकर अलबरूनी के लेखों में वैश्य तथा शूद्रों को एक ही श्रेणी में रखा गया।

37.7 वर्ण पदानुक्रम के विचार का प्रसार एवं रूपांतरण

उत्तर भारत के गांगेय प्रदेश से बाहर जब वर्ण व्यवस्था का प्रसार हुआ तो इसके अंतर्गत भी संशोधन हुए। चार-स्तरीय वर्ण व्यवस्था का प्रचलन पूर्वी, दक्कन, मध्य एवं दक्षिण भारत के भागों में नहीं था। उत्तरी-भारत में चार-स्तरीय वर्ण व्यवस्था की ऐतिहासिक जड़े थीं क्योंकि समय के साथ-साथ इसका वहां पर विकास हुआ और समाज पर इसकी पकड़ और मज़बूत हो गई। परन्तु वर्ण पर आधारित समाज विभाजन का विचार जब अन्य क्षेत्रों में फैला तब इसके मूलभूत रूप में काफी अंतर आ गया। पांचवीं-छठी सदियों से भूमि-अनुदानों के फलस्वरूप ब्राह्मण भी देश के अन्य भागों में फैल गए। उन्होंने स्थानीय पुजारी गुटों पर ब्राह्मणों के स्तर को प्रतिपादित किया। इन नए क्षेत्रों के स्थानीय कबिलाइयों ने ब्राह्मणिक संस्कृति को ग्रहण कर लिया तथा ब्राह्मणिक समाज के आधार पर पहले से बसे हुए कृषि समाज के साथ घुलमिल गए।

यद्यपि कुछ ब्राह्मण एवं ब्राह्मणिक विचार दक्षिण में पहले ही फैल चुके थे, परन्तु अग्रहार के नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मणिक बस्तियां दक्षिण भारत में पल्लव एवं उत्तर-पल्लव कालों में अस्तित्व में आयीं। पल्लव राज्य में शिक्षण संस्थाओं के विकास में ब्राह्मणीकरण स्पष्ट दिखाई देता है। पांचवीं-छठी सदियों से ब्राह्मणों का विस्थापन विभिन्न दिशाओं को होने लगा था। इन सदियों में वे दक्कन, मध्य भारत, उड़ीसा, बंगाल एवं असम में फैल गए। इन क्षेत्रों में ब्राह्मणिक संस्कृति का प्रभाव इससे भी स्पष्ट है कि उनको इन क्षेत्रों में भूमि-अनुदान एवं उनको उच्च पद प्रदान किए गए।

प्रारंभिक मध्यकालीन भारत की दो महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रियायें थीं, प्रथम, कबिलाइयों का एक जटिल सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत किसानों में रूपांतरण और दूसरे उनको शूद्र वर्ण के साथ संबंधित समझना। दूसरी ओर, क्षत्रिय वर्ण उत्तर भारत से बाहर के क्षेत्रों में अपनी जड़ें वास्तव में गहरी न कर सका। नए स्थापित राज्यों में बहुत से शासक वंशों ने क्षत्रिय होने का दावा प्रस्तुत किया तथा उन्होंने अपने वंशों का सम्बन्ध सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश से सिद्ध करने के प्रयास किए। इसी के साथ-साथ वैश्य वर्ण इन क्षेत्रों में उदित

न हुआ क्योंकि इस समय तक दक्कन, मध्य भारत, पूर्वी भारत और दक्षिण में ब्राह्मणवाद का तेज़ी के साथ फैलाव हुआ एवं इसलिए इन क्षेत्रों में शूद्रों तथा वैश्यों के बीच का मतभेद काफी कम हो गया।

इस प्रकार, गांगेय प्रदेश से बाहर के क्षेत्रों में व्यापक रूप से समाज का वर्गीकरण केवल ब्राह्मणों तथा शूद्रों के रूप में ही हो पाया। क्षत्रियों की एक स्थायी एवं स्पष्ट समुदाय के रूप में जड़ें न जम सकीं और वैश्य भी केवल तब-तब प्रकट होते थे जब-जब आर्थिक सम्पन्नता, व्यापार एवं वाणिज्य की प्रगति होती थी। फिर भी उस समय ऐसी बहुत-सी व्यावसायिक जातियां थीं जिनके ओहदों में समय के साथ वृद्धि होती रहती थी।

37.8 महिलाओं की स्थिति

इस काल के दौरान समाज में महिलाओं की स्थिति में क्रमशः पतन हुआ। आचार-संहिता पुस्तकों में महिलाओं की कम आयु में या यौवन अवस्था से पूर्व विवाह करने की प्राथमिकता का उल्लेख हुआ है। महिलाओं के लिए औपचारिक शिक्षा को मना कर दिया गया। महिला और सम्पत्ति को एक ही श्रेणी में कर दिया गया जिससे उनकी सामाजिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव हुआ। सामान्यतः उनको सम्पत्ति अधिकार से वंचित कर दिया गया। परन्तु विधवाओं के मामले में सम्पत्ति अधिकारों में कुछ सुधार हुआ। **स्त्री धन** (जिसका साहित्यिक अर्थ है महिलाओं का धन) के प्रावधानों से स्पष्ट है कि इसका अधिक महत्व इसलिए नहीं था क्योंकि महिलाओं को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति जैसे जेवर, आभूषण एवं उपहारों से अधिक को रखने का अधिकार नहीं था। बृहत संहिता जैसे समकालीन साहित्यिक ग्रंथों में महिलाओं एवं शूद्रों के लिए संयुक्त रूप से संदर्भों का प्रयोग महिलाओं की समाज में दुर्दशा को स्पष्ट करता है। उनको बहुत से यज्ञों एवं उत्सवों में भाग लेने से वंचित कर दिया गया। इसी काल में सती प्रथा को भी सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो गई। विवाह के पश्चात् महिलाओं के गोत्र में परिवर्तन का प्रारंभ भी पांचवीं सदी ई. से हो गया। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था क्योंकि इसकी अंतिम परिणति उनके पैतृक घर में उनके अधिकारों की समाप्ति के रूप में हुई और यह पैतृक व्यवस्था या पुरुष-प्रधान समाज की विजय का प्रतीक था।

37.9 ज़मींदार और किसान

यह पहले ही बताया जा चुका है कि इस समय की कृषि व्यवस्था में किसानों से भिन्नता बनाए रखने के लिए ज़मींदारों के भी कई वर्ग थे। भोगी, भोक्ता, भोगपति, महाभोगपति, बृहद्भोगी आदि शब्दों का प्रयोग भूमि से लाभ प्राप्तकर्ताओं के लिए किया गया। ज़मींदारों को उच्च वर्ग में राणका, राजा, सामन्त, महासामन्त, मण्डलेश्वर आदि को भी सम्मिलित किया गया। भूमि पर अपने स्वामित्व और प्रभुत्व को स्पष्ट करने के लिए वे इस प्रकार की भारी भरकम उपाधियों को धारण करता था। ज़मींदार लोग भूमि पर अपने प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए जिन उपाधियों का प्रयोग करते थे उनसे स्पष्ट है कि भू-सम्पत्ति पर उनको उच्च अधिकार प्राप्त थे। इन उपाधियों से यह भी प्रकट होता है कि उनका वास्तविक खेती कार्यों से कोई सम्बन्ध न था। यहां पर यह भी कहा जा सकता है कि उनको विशेष प्रकार के एवं बेदखल (इससे पूर्व की इकाई में इनका विवरण दिया गया है) करने के अधिकार प्राप्त थे। भूमि-अनुदान अधिकार पत्रों के द्वारा दान प्राप्तकर्ताओं को परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा व्यक्तिविशेष के विरुद्ध किए गए अपराधों सहित दस अपराधों (दशापराध) के लिए लोगों को दण्डित करने का अधिकार मिल गया था। वे दीवानी के मामलों का भी निबटारा करते थे। इस प्रकार के अधिकारों के साथ-साथ आर्थिक प्रभुत्व होने से ज़मींदारों ने प्रभावशाली ढंग से किसानों का शोषण किया।

किसान वर्ग भी स्वयं में कोई एक रूप समुदाय न था। उनको भी कृषक, कृषि वाला, किसान, क्षेत्राजीवी, हलिका, अर्धाश्री, अर्धिका, कुटुम्बी और भूमि कर्षक आदि अन्य नामों से पहचाना जाता था। इन सब नामों से सामान्यतः ऐसा प्रतीत होता है कि उनका भूमि पर नियंत्रण से कोई सम्बन्ध न था। उनका वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया गया। उनको भूमि जोतने वाला, निर्भर किसान, बटाईदार, खेत मज़दूर आदि नाम दिए गए और इनमें से किसी का भी भूमि पर स्वतंत्र स्वामित्व न था। किसान लोग अपने परिश्रम के फल के मालिक न थे। उनके परिश्रम का एक बड़ा भाग ज़मींदारों की इच्छा पर था। इसके अतिरिक्त, उसको उत्पादन के लिए बेगार करनी होती थी और इसी के साथ किलों, मंदिरों तथा अनुदान प्राप्तकर्ताओं के आडम्बरपूर्ण निर्माणों के लिए परिश्रम करना होता था। इस संदर्भ में यह तथ्य रोचकपूर्ण है कि 1000 ई. के पूर्वार्द्ध में किलों की संख्या एवं उनका महत्व काफी बढ़ गया। किलों एवं विशाल भवनों के निर्माण भय के वातावरण को उत्पन्न करते थे एवं ज़मींदारों का सैन्य शक्ति के लिए सम्मान भी, तथा इनसे किसानों की जीविकोपार्जन भी निश्चित हो जाती थी।

चौथी सदी से सातवीं सदी तक के काल में बंधुआ मज़दूरी या **विष्ति** का प्रारंभ हो चुका था। कोंकण, महाराष्ट्र, गुजरात तथा मालवा में किसानों के साथ-साथ कारीगरों को भी बंधुआ मज़दूरी के लिए रखा जाता था। धार्मिक रूप से लाभ प्राप्त करने वालों को गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश तथा कर्नाटक के भागों में मज़दूर रखने का अधिकार था। छठी-सातवीं सदियों में गांवों के मुखियाओं तथा छोटे अधिकारियों को भी अपने व्यक्तिगत लाभों के लिए बंधुआ मज़दूरी कराने की परम्परा का सबसे पहला प्रमाण **भगवत पुराण** से उपलब्ध होता है जिसकी रचना आठवीं सदी के आसपास की गई। इस समय के आते-आते बंधुआ मज़दूरी की परम्परा सम्पूर्ण भारत में फैल चुकी थी। उत्तर-गुप्त काल में स्थानीयता की विशेषता के साथ निश्चित कृषि अर्थव्यवस्था के कारण बंधुआ मज़दूरी का प्रसार और महत्व और भी बढ़ गया।

37.10 जातियों की संवृद्धि

इस काल के दौरान की जाति व्यवस्था की कुछ विशेषताओं का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। यह स्पष्ट किया गया था कि इस समय में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, वह था जातियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि होना। इस परिवर्तन के कारण ब्राह्मणों, क्षत्रियों (बाद में राजपूतों), शूद्रों और अछूतों पर भी प्रभाव पड़ा। जिन वर्णों का अस्तित्व था वे जातियों में टूट गए और ऐसे कबीले जो जातियों में रूपांतरित हो चुके थे इनमें सम्मिलित हो गए। जैसे-जैसे ब्राह्मणिक समाज का प्रसार हुआ वैसे-वैसे वर्ण व्यवस्था के अंदर मतभेद गहरे होते गए। प्रत्येक वर्ण में पदानुक्रम पैदा हो गए क्योंकि विभिन्न स्तरों पर सांस्कृतिक विकास के कारण जनता और समुदायों के बहुत से गुटों के मिलन और उनके द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपना लिया गया। सम्पत्ति तथा राजनीतिक शक्ति के असमान विभाजन ने इस काल में जाति के भेदभावों को और बढ़ाया। एक ही वर्ण के अंतर्गत बहुत-सी जातियों का संयोग हो गया परन्तु पहले के कुछ ऐसे भी उदाहरण है कि एक ही समान समुदाय कई वर्णों और जातियों में टूट गए। इस उपलक्ष्य में सबसे अच्छा उदाहरण आभीर कबीले का है, जो आभीर ब्राह्मणों, आभीर क्षत्रियों तथा आभीर शूद्रों में बंट गया।

37.10.1 ब्राह्मण

ब्राह्मणों के बीच जिन जातियों का उद्भव हुआ उनकी संख्या भी काफी थी। जिन ब्राह्मणों ने अपनी धार्मिक सेवाओं का "व्यापारीकरण" किया, जो स्थानीय निवासियों के सम्पर्क में आए तथा उनमें जो पूर्णतः शारीरिक परिश्रम की अवहेलना न कर सके, उन ब्राह्मणों को **क्षत्रिय अग्रहार ब्राह्मण** पतित समझने लगे तथा ये ब्राह्मण स्वयं शारीरिक परिश्रम न करते थे। भूमि-अनुदानों का भोग करने के लिए ब्राह्मणों का बहुत से क्षेत्रों का विस्थापना हुआ जिसके कारण वर्ण के अंतर्गत जातियों और उप-जातियों के निर्माण की प्रक्रिया और तेज़ हो गई। विस्थापित ब्राह्मणों ने अपनी उत्पत्ति के स्थान, उनके द्वारा अनुसरणीय वैदिक ज्ञान की शाखा आदि के आधार पर अपनी पहचान को बनाए रखा। उनकी वंशानुगत पहचान ने भिन्नताओं के लिए एक और आधार प्रदान किया। बहुत से कबीलों का जातियों में रूपांतरण हो जाने के बावजूद भी उन्होंने अपने पुराने पुजारियों को बनाए रखा और उनकी नीचे ब्राह्मणों के रूप में मान्यता हो जाने के फलस्वरूप ब्राह्मणों के बीच विभाजन को और गहरा किया। जहां एक बार वर्ण के विचार को स्वीकृति प्राप्त हो गई फिर उसके बाद स्थानीय पुजारी समुदायों को ब्राह्मण की मान्यता प्राप्त होने में कोई कठिनाई न रही। जो ब्राह्मण राजनीतिक शक्ति के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े थे तथा राज्य में उच्च पदों पर आसीन होते थे उनका वर्ग अलग था। इस प्रकार के ब्राह्मणों के द्वारा विशेष पदों पर आसीन होने के कारणवश उन्होंने ब्राह्मण वर्ण के अंदर ही एक विशेष वर्ग बना लिया। यही प्रक्रिया क्षत्रियों के लिए भी सत्य थी।

37.10.2 क्षत्रिय

क्षत्रियों के बीच जाति संवृद्धि का कारण स्थानीय कबीलों के बीच से शासक घरानों का उदय तथा विदेशी जातीय गुटों का राजनीतिक शक्ति के साथ समाज की मुख्य धारा में मिल जाना था। विदेशी जातीय गुटों में से बैक्ट्रिया के पुजारियों, शकों, पार्थियनों, हूणों आदि को वर्ण व्यवस्था में समाहित करते हुए उनको दूसरी श्रेणी का क्षत्रिय बना दिया गया। यह अवधारणा कि केवल क्षत्रिय ही शासन कर सकते थे, इसके कारण नए शासक घरानों को क्षत्रियवाद हेतु ब्राह्मणों का समर्थन प्राप्त करने के लिए मजबूर होना पड़ा जिससे कि वे अपने शासन के लिए लोकप्रिय स्वीकृति एवं वैधता पा सके। क्षत्रिय जातियों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि पांचवीं-छठी सदियों से उस समय से होनी प्रारम्भ हुई जबकि बहुत से कबीलों के सरदारों का उन ब्राह्मणों की स्वीकृति के द्वारा "हिन्दुत्व" रूपांतरण हुआ जिनको उन्होंने संरक्षण दिया और वैदिक बलि यज्ञों का आयोजन किया। उत्तर-गुप्त काल में बहुत से शासक वंशों का उद्भव छोटी जातियों से हुआ था और धीरे-

धीरे उन्होंने क्षत्रिय स्तर को प्राप्त कर लिया। प्रायद्वीप भारत के पल्लव और चालुक्य, बंगाल और बिहार के पाल, तथा उड़ीसा में बहुत से उप-क्षेत्रीय वंशों की उत्पत्ति आदिवासियों से हुई। आगामी शताब्दियों में अधिकतर राजपूतों का उद्भव कबीलों या फिर चरवाह जातियों से हुआ था। शासक वंशों की एक समान उत्पत्तियों तथा उनकी सामाजिक स्वीकृति की इच्छा क्षत्रिय समुदाय में जाति संवृद्धि का स्पष्ट प्रमाण है।

37.10.3 शूद्र

सजातीय वैवाहिक गुटों का बहुत से समुदायों एवं क्षेत्रों से आने पर शूद्र वर्ण का आधार व्यापक रूप से फैल गया। गुप्त और उत्तर-गुप्त काल में असमान आर्थिक शक्ति के संसाधनों के साथ-साथ छोटी-कृषक जातियां, धनी किसान, बंटाईदार तथा कारीगरी जातियां भी शूद्र वर्ण में शामिल हो गईं। इस प्रकार शूद्र वर्ण के अंतर्गत व्यापक रूप से भेदभाव वाले गुट सम्मिलित हो गए और सबसे अधिक जातियों की संख्या भी इसमें मिल गई। बहुत-सी मिश्रित जातियां, "पवित्र" एवं "अपवित्र" दोनों प्रकार की सातवीं-आठवीं सदियों में प्रकट हुई। "अपवित्र" जातियों को अछूत कहा गया। दूर-दराज के इलाकों में कबिलाई समुदायों के द्वारा ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाना तथा उनका कृषक बनने वाली प्रक्रिया के सतत प्रवाह ने ब्राह्मण संस्कृति के प्रसार में सहायता की। कबीलों का क्रमिक रूप से किसानों में रूपांतरण होने के परिणामस्वरूप उनकी जातियां बन गईं और इन किसान गुटों को ब्राह्मणिक समाज में शूद्रों के रूप में शामिल कर लिया गया। इसके परिणामस्वरूप शूद्रों की संख्या तथा उनकी जातियों में काफी वृद्धि हुई। इसी के साथ-साथ जैसा कि ऊपर भी बताया गया कि इस प्रकार के मामलों में कबीलों के बीच के अग्रिम परिवारों तथा सरदारों को क्षत्रियों की उच्च जातियों या राजपूतों जैसी समान जातियों और ब्राह्मणों में शामिल कर लिया गया।

क्षेत्रीय (दस्तकारों, कारीगरों तथा व्यापारियों के संगठन) का जातियों में रूपांतरण और अछूतों के विभिन्न वर्गों के उद्भव ने सदैव बढ़ती जातियों की संख्या में और वृद्धि की। नौवीं-दसवीं सदियों तथा बाद के समय के दौरान जातियों एवं उप-जातियों के निर्माण की प्रक्रिया में अति तीव्रता आ गई। एक आधुनिक शोध के अनुसार, वर्तमान भारत में लगभग पांच हज़ार जातियां हैं और इसी के साथ एक भाषा वाले राज्य में लगभग तीन सौ जातियां हैं। इन स्थानीय जातियों के निर्माण की प्रक्रिया का प्रारम्भ निश्चित रूप से उत्तर-गुप्त काल में हुआ था।

बोध प्रश्न 2

1) वैश्य समुदाय में होने वाले परिवर्तनों का विवेचन उनके आर्थिक ह्रास के संदर्भ के साथ कीजिए। आपका उत्तर दस पंक्तियों से अधिक न हो।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) इस काल के दौरान महिलाओं की स्थिति का विवरण दीजिए। उत्तर दस पंक्तियों में हो।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) गुप्त तथा उत्तर-गुप्त काल में जातियों की संवृद्धि मुख्य परिवर्तन था। पन्द्रह पंक्तियों में विवरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

37.11 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर-गुप्त काल में विशेष महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन हुए। जैसा कि धर्मशास्त्रों से ज्ञात होता है कि वर्ण पदानुक्रम की व्यवस्था एवं चरित्र में क्रांतिकारी रूपांतरण हुआ। उत्तर भारत में वैश्यों तथा शूद्रों के बीच विभेद करना कठिन हो गया परन्तु पूर्वी भारत, दक्कन और दक्षिण भारत में मुख्य रूप से ब्राह्मण एवं शूद्र दो ही वर्ण अस्तित्व में थे। वर्ण पदानुक्रम समाज के लिए एक मात्र सैद्धांतिक योजना बनी रही परन्तु व्यावसायिक जातियां सामाजिक वास्तविकता में सक्रिय रूप से कार्यरत हो गई। परन्तु बहुत सारी जातियों के पदानुक्रम में इस योजना की उपयोगिता कायम रही क्योंकि यह जातियों की "पवित्रता" या "अपवित्रता" को निश्चित करती थी। क्षत्रिय जैसी नई जातियों के उद्‌भव के बहुत से कारण थे जैसे कि बंटवारे के कानूनों का क्रियाशील होना, भूमि का विभाजन और भूमि का हस्तांतरण। खेती करने वालों के रूप में शूद्रों की स्थिति में सापेक्ष वृद्धि हुई परन्तु वैश्यों की सामाजिक स्थिति में कुछ गिरावट आई। भूमिविहीन अछूत एक वास्तविकता बन गए और उनकी संख्या में वृद्धि हुई। सामान्यतः जातियों की संवृद्धि इस काल का सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था। समाज लगातार पदानुक्रम के स्तरों में विभाजित होता जा रहा था और बहुत सारी जातियों को समाज में निम्न स्तर की स्थिति प्राप्त थी। ब्राह्मणिक समाज का स्पष्टतः तुलनात्मक रूप में कुछ उच्च जातियों एवं अधिसंख्यक नीची जातियों के बीच ध्रुवीकरण हो गया। द्विजों (ऊपर के तीन वर्णों में दो बार जन्मे) तथा शूद्रों के बीच कोई अंतर न रह गया। इसी समय से यह कहा जाने लगा कि ये जातियां अनुष्ठानिक रूप से पवित्र हैं तो अमुक अपवित्र। इन सभी प्रकार के परिवर्तनों के बीच में किसानों को आधीन किया जाने लगा और छोटे-बड़े सभी प्रकार के भूमि-अनुदान प्राप्तकर्ताओं के

द्वारा उनका शोषण होने लगा। इसके पूर्व की इकाई में वर्णित आर्थिक परिवर्तनों ने इन सामाजिक परिवर्तनों के लिए पृष्ठभूमि तैयार की।

37.12 शब्दावली

नई संस्कृति को अपनाना : यहां पर इसका प्रयोग ब्राह्मणिक संस्कृति को अपनाने के संदर्भ में किया गया है।

देशवासी : स्वदेशी : देशवासी : प्राचीनतम।

सहभोजन करना : आपसी लाभ के लिए एक साथ बैठकर खाना–पीना।

किसान आधार वाली जाति : इसका प्रयोग प्रारंभिक कृषि समाज की बस्तियों के लिए किया गया जिनके सदस्यों का वर्गीकरण जातियों के आधार पर किया गया।

सजातीय विवाह : एक ही जाति के अंदर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना।

अंतर्जातीय विवाह : दूसरी जाति मे विवाह करना।

पैतृक/प्रभुत्व : वे परिवार जिनका संचालन पैतृक अधिकारों के अनुरूप होता है।

37.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आपको अपने उत्तर में मुख्य आर्थिक परिवर्तनों, नए सामाजिक गुटों का उद्भव, नई जातियों की संवृद्धि, अनुष्ठान तथा गुटों के वास्तविक स्तर के बीच विरोधाभास आदि लिखना चाहिये। भाग 37.1 और 37.2 देखिए।

2) i) √ ii) × iii) √

3) उपभाग 37.2.1 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) आपको अपने उत्तर में कृषि आधार का प्रसार, व्यापार एवं शहरी व्यवसायों के ह्रास को शामिल करना चाहिए। भाग 37.6 देखिए।

2) भाग 37.8 देखिए।

3) भाग 37.10, उपभाग 37.10.1, 37.10.2 और 37.10.3 देखिए।